अध्याय-3

सुरेश सेन निशांत की काव्य-संवेदना

सुरेश सेन निशांत हिंदी कविता के एक महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं जिन्होंने अपनी कविता के माध्यम से एक नयी पहचान बनायी है। काव्य के प्रति उनका समर्पण, प्रेम और निष्ठा ही उन्हें अन्य कवियों से अलग पहचान देते हैं। हाशिये के लोगों की पक्षधरता जहाँ उन्हें जनवादी मूल्यों से जोड़ती है, वहीं व्यवस्था की विसंगति के प्रति आक्रोश एवं क्षोभ उन्हें एक सचेत और जागरूक नागरिक के साथ-साथ एक कवि के कर्तव्य की ओर उन्मुख करता है। कह सकते हैं कि सुरेश सेन निशांत एक जनवादी कवि हैं, जिन्होंने इक्कीसवीं सदी में हिमाचलीय लोक जीवन के साथ -साथ देश की विभिन्न स्थितियों की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं के जटिल यथार्थ को अपने काव्य का विषय बनाया है।

युवा कवि मनोज चौहान सुरेश सेन निशांत पर लिखे अपने एक स्मृति लेख में निशांत जी को एक जनवादी कवि स्वीकार करते हैं। वे निशांत जी के कविता संबंधी वक्तव्य को उद्धृत करते हुए लिखते हैं, ''कविता इंसान को इंसान बने रहना सिखाती है और एक सार्थक कविता वही है जो सबसे अंतिम व्यक्ति के पक्ष में खड़ी हो। कविता में लोक की बात अवश्य आनी चाहिए।''[1]

सुरेश सेन निशांत ने हिंदी साहित्य में कविता लेखन की शुरूआत 20वीं सदी के अंतिम दशक से की। इससे पहले निशांत जी लगभग पाँच वर्षों तक ग़जलों की रचना करते रहे। उनकी अनेक गजलों का प्रकाशन 'जनपथ' पत्रिका में कृष्णकांत के संपादन में हुआ। इसके पश्चात् उनके किसी मित्र द्वारा 'पहल' पत्रिका दिए जाने पर कविता के प्रति उनकी धारणा टूटी

और फिर वे काव्य-लेखन की ओर अग्रसर हुए। लगभग इन बीस वर्षों के दौरान उनकी कई महत्त्वपूर्ण कवितायें विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं । जिनके परिणामस्वररूप उनका पहला काव्य-संग्रह 'वे जो लकड़हारे नहीं हैं' वर्ष 2010 ई० में प्रकाशित हुआ।

सुरेश सेन निशांत की काव्य-संवदेना की बात करें तो उन्होंने पहाड़ी लोक जीवन की विविध छवियों के साथ-साथ वहाँ की प्रकृति के विविध पहलुओं को चित्रांकित किया है। उन्होंने हिमाचल प्रदेश के उन युवा बेरोजगारों की विस्थापन संबंधी समस्याओं को भी रेखांकित किया है जो रोजगार की तलाश में अन्य प्रदेशों को चले जाते हैं। वहां की परिस्थितियों में घुल-मिल जाते हैं । सुरेश सेन निशांत काव्य के प्रति एक सचेत रचनाकार हैं जिन्होंने भाषा और लय में सहजता एवं सरलता का मार्ग अपनाया हैं। वे इक्कीसवीं सदी के ऐसे कवि-रचनाकार हैं, जिन्होंने अपनी काव्य-चेतना का विकास हिमाचल प्रदेश के सुदूर पहाड़ी लोक जीवन के बीच किया है। उन्होंने पहाड़ी लोक जीवन की वेदना को देखा, भोगा और महसूस किया है, उसी की अभिव्यक्ति उनके काव्य में मिलती है। वे लिखते हैं :

"कविता वहीं से करती है / हमारे संग सफ़र शुरू
जहाँ से लौट जाते हैं / बचपन के अभिन्न दोस्त
अपनी-अपनी दुनिया में /जहाँ से माँ करती है हमें
दूर देश के लिए विदा / जिस मोड़ पर
अपनी अंगुली छुड़ाकर अकेले चलने के लिए /कहते हैं पिता
ठीक वहीं से करती है/ हमारे संग कविता /अपना सफ़र शुरू।"[2]

निशांत जी की कविता हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय लोक जीवन का संघर्ष, उसके श्रम-सौन्दर्य के साथ-साथ वहां के प्रकृति सौंदर्य का भी चित्रण मिलता है। इसमें वे कहीं बाल सुलभ

चेष्टाओं को रेखांकित करते हैं तो कहीं पर किसानों एवं श्रमिकों के संघर्षों का चित्रण करते हैं। सुरेश सेन 'सेब' कविता के माध्यम से हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, आत्मीयता और वहाँ के जीवन की स्वाभाविकता एवं सहजता को चिह्नित और चित्रित करते हैं। वे अपने लोक जीवन की मिठास और स्थानीयता के रंग को सुदूर सम्पूर्ण देश में फैलाना चाहते हैं। उन्होंने इस स्थानीयता के रंग को श्रम और मेहनत से उत्पन्न किया है, जो उनकी मिठास, प्रेम व आत्मीयता से उपजी है। उसमें उस लोक जीवन की चिड़िया की मधुर चहचहाहट है, पहाड़ों का संगीत और वहाँ के लोगों के प्रेम का रंग है। इसीलिए कवि इस मिठास को पूरे देश में फैलाना चाहते हैं। वे लिखते हैं :

"सेब नहीं चिट्ठी है
पहाड़ों से भेजी है हमने
अपनी कुशलता की।

--- --- ---

सुदूर बैठे आप / जब भी चखते हैं यह फल
चिड़िया की चहचहाहट / पहाड़ों का संगीत
धरती की खुशियां और हमारा प्यार
अनायास ही पहुँच जाता है आप तक।"[3]

कवि अपने भावों को 'सेब' कविता के माध्यम से प्रतीक रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे इस कविता के माध्यम से स्थानीयता के द्वारा वहां के हाल और कुशलता को जानने की कोशिश करते हैं। वे 'चावल' कविता के माध्यम से हिमाचल प्रदेश की लोक परम्परा में अन्तर्निहित माँ-बेटी व उनके पारिवारिक सम्बन्धों को रेखांकित करते हैं। वहाँ के लोक जीवन में अन्तर्निहित 'जातीबार' एक प्रथा है, जिसके माध्यम से कवि उस पूरे सामाजिक परिवेश और उसकी स्थिति

को उजागर करते हैं। इसमें कवि एक स्त्री किस प्रकार अपने बचपन की एक लड़की की छवि की तुलना करते हुए यह बताते हैं कि जो अपने जीवन में स्वच्छन्द उड़ान भरना चाहती है, जिसके रहने से घर, आँगन में खुशियां थीं, आज विवाहित होने पर उसे इस बचपन को छोड़ना पड़ रहा है और कई जिम्मेदारियों को निभाना पड़ता है। इससे उस स्त्री के जीवन में अनेक प्रकार के दबाव और परेशानियाँ जन्म लेती हैं। चूँकि जौ और चावल मानवीय सभ्यता के प्रारंभिक उत्पादक अन्न है, अतः शुभ होने के कारण उसे जातीबार के रूप में प्रयोग किया जाता है। उस चावल के स्पर्श मात्र से जिसे माँ ने दिया है, मृदुल एवं मीठी स्मृतियों की याद दिलाता है। वह उस माध्यम वर्गीय किसान की लहलहाती फसलों की याद दिलाता है, जिसमें किसान का जीवन प्रसन्नता से भरा हुआ है। इस चावल से समस्त प्रकृति, वातावरण एवं पारिवारिक संबंधों में सिंचित प्रेम को महसूस किया जा सकता है वहीं दूसरी ओर उनकी आर्थिक स्थिति की ओर इशारा मिलता है। माँ के पास बेटी को देने के लिए यही 'जातीबार' है। इसीलिए माँ अपनी बेटी के लिए चावल को पोटली में बाँधकर देती है :

''माँ ने एक छोटी-सी पोटली में/बाँध दिए नए चावल
यही है माँ के पास/बेटी को देने के लिए जाती बार।
''बेटी ने छुए चावल छू लिया माँ का आशीर्वाद
छू लिए बरसता में भीगे / खेतों के हँसमुख चेहरे
धान की मंजरियों से सता प्यार/अपने बचपन की नदियों का जल।
माँ ने दिये हैं यह चावल/यही रहा सबसे कीमती देने को माँ के पास।''[4]

कवि इस 'चावल' तथा जातीबार नामक प्रथा के माध्यम से हिमाचलीय लोक जीवन के रागात्मक पारिवारिक-सम्बन्धों के साथ वहाँ के आर्थिक स्त्रोतों के माध्यम से उसकी विसंगतियो को दर्ज करते हैं।

सुरेश निशांत के काव्य में प्रकृति के विभिन्न तत्वों की छवियों को देखा जा सकता है, पेड़, पौधे, पहाड़ नदी-नाले, झीलें इत्यादि। सुरेश सेन निशांत का जन्म प्रकृति की सुन्दर घाटियों में हुआ था। हिमाचल प्रदेश का यह पर्वतीय क्षेत्र जितना देखने में सुन्दर है वहीं यहाँ का जीवन उतना ही कठिन और दुर्गम है। दुर्गम पहाड़ियों में सुगमता के संचार हेतु भारत सरकार ने उनके लिए अनेक योजनाएँ बनायी हैं। इन नई औद्योगिक नीति (1991ई.) के बाद से ही विनिर्माण क्षेत्र में इन्वेस्टमेंट करने की क्षमता बढ़ी, जिससे ऊर्जा एवं खाद्य संबंधी विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन की माँग बढ़ी। तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने आर्थिक नीति को लागू करते हुए पहाड़ी क्षेत्रों पर भी विशेष ध्यान दिया।

सुरेश सेन निशांत पर्वतीय क्षेत्र के देशकाल एवं वातावरण को अनुभव करते हैं। वे अपने परिवेश के प्रति इतना सक्रिय, सचेत एवं संवेदनशील हैं कि उनके दिल की धड़कनों में वहाँ की प्रकृति स्पन्दन पाती है। जब कभी कहीं से भी प्रकृति एवं आमजन को पीड़ा दी जाती है, इनका क्षरण किया जाता है, तो सुरेश सेन निशांत इस क्षरण, इस दुख या पीड़ा को गहराई से महसूस करते हैं।

इसी कारण सुरेश सेन की कविताओं में इस पहाड़ एवं पहाड़ी लोकजीवन की व्यथाओं एवं पीड़ाओं की झलक मिलती है। वे अपनी कविता 'बहुत दिनों बाद नदी से बातचीत' में नदी के स्पन्दन को महसूस करते हैं और उसकी पीड़ा से व्यथित होते हैं। वे लिखते हैं कि किस प्रकार नदी पर संकट गहराता जा रहा है। वह प्रश्नवाचक संवाद शैली में देखा जा सकता है। वे नदियों की स्वाभाविक दिनचर्या को और सहज और सजीवन बनाना चाहते हैं। लेकिन यथार्थ में विभिन्न स्थितियाँ, योजनायें एवं नीतियाँ इसमें सफल नहीं हो पायी हैं, जिससे इनका अस्तित्व संकट और भी तेजी से गहराता गया है। कहीं-कहीं पर तो नदियाँ सूख गयी है, उनमें से जल समाप्त हो गया है। कवि नदी से प्रश्न करता है कि क्या तुम्हारे इस खदले पानी में मछली क्या

उसी प्रकार से अपना स्वाभाविक जीवन जीती हैं। क्या वह अपने बच्चों के साथ बिना किसी खौफ एवं भय के जल में क्रीड़ा करती हैं। इस कविता के माध्यम से कवि यह बताते हैं कि न केवल नदियों में रहने वाली मछलियाँ, अपितु इस संसार में रहने वाले मनुष्य को भी कृत्रिम जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ रहा है, जिससे उनके जीवन की सहजता और स्वभाविकता छीनती जा रही है। अतः यहाँ का देशकाल व वातावरण भय एवं संशय से घिरता जा रहा है। वह लिखते हैं :

''तुम्हारे इस खदले हुए जल में
मछलियाँ क्या अब भी वैसा ही चालाकी भरा
बच्चों को छकाने जैसा/खेल खेलती रहती है नदी?'' [5]

कवि निशांत मानते हैं कि विभिन्न योजनाओं एवं नीतियों के साथ-साथ मनुष्य के असंवेदनशील रवैये ने इन प्राकृतिक तत्वों (नदियों) को गहरा धक्का पहुँचाया है। जल के प्रदूषण से जहाँ इन नदियों को दूषित किया है, वहीं जल में रहने वाले जीवों का जीवन अस्वाभाविक हो उठा है, जिससे उनका संघर्ष बढ़ गया है। इससे तापमान में वृद्धि हुई है, जिसके कारण ग्लेशियर तेजी से पिघलते जा रहे हैं। बारिश कम होने के कारण नदियों का जल स्तर भी कम हो गया है। इससे नदियों एवं नदियों में रहने वाले जीवों का जीवन प्रभावित हुआ है। कवि का नदियों को देखने और महसूस करने का दृष्टिकोण अत्यन्त प्रसंशनीय है। वे लिखते हैं:

"क्या तुम बूढ़ी हो रही हो नदी/क्या तुम्हें भी हो रही है चलने
और साँस लेने में तकलीफ/ क्या तुम भी हमारी तरह
एक दिन मर जाओगी नदी?"[6]

काव्य एवं जीवन के प्रति इतनी संवेदनशीलता एवं चिंतन ने उन्हें अन्य कवियों से अलग पहचान दिलायी है। प्रारम्भ में नदियों का जीवन अत्यंत दीर्घ होता था। वहीं अब इनके अस्तित्व पर गहराते संकट ने मानव के पर्यावरण सम्बन्धी नीतियों पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। इसी समय में निशांत जी का कवि एवं नागरिक कर्तव्य भी बढ़ जाता है, जो उनकी कविता में दिखायी देता है। निशांत जी अत्यन्त संवेदनशील तथा प्रकृति के अदम्य प्रेमी रचनाकार हैं। जहां अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना तात्कालिक समाज की माँग भी है। निशांत जी नदियों को प्रदूषित करने वाले शहरी लोगों की मानसिकता को रेखांकित करते हैं। वे नदियों से प्रश्न करते हैं कि क्या जब कोई घर तुम्हारे में समा जाता है, डूब जाता है, तुम्हारे जल में नाले-परनाले गिराये जाते हैं, तो तुम्हे भी दुख होता है? कवि की चिंता जायज है, वह प्रकृति के उन तमाम सृजित अंगों को जानना चाहता है, समझना चाहता है, उसे महसूस करना चाहता है। निशांत नदी की संवेदनशीलता को जानने के लिए ऐसा प्रश्न करते हैं, जिसमें थोड़ी दिलासा भी है। वह लिखते हैं :

''नदी जब टूटता है तुम्हारा तट/गिरता है तुममें कोई गंदा परनाला
डूबता है कोई भरा पूरा गाँव तुम में/
क्या तुम भी हमारी तरह भर जाती हो/विलाप से नदी?'' [7]

निशांत जी प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, मृदा-अपरदन, भूस्खलन इत्यादि से मानव निर्मित अनेक खुशहाल गांवों का नदी में समा जाने जैसी समस्याओं तथा नदियों में गंदे जल का स्त्राव होने से नदियाँ किस प्रकार प्रभावित होती हैं, इसे वे अपनी कविताओं में प्रश्नवाचक शैली के माध्यम से जानना चाहते हैं। कवि कविता के माध्यम से वहां के लोक जीवन व प्रकृति में स्वाभाविक जीवन से गायब होती सहजता को दुबारा पाना चाहते हैं। वे लिखते हैं :

''बहुत दिनों बाद / हो रहा है तुमसे मिलना नदी

क्या निश्छल जल से भरा /अब भी वैसे ही छलकता है

मेरी माँ जैसी/उन औरतों का खाली घड़ा तेरे तट पर नदी?

पुल बनने के बाद/क्या अब भी तेरे तट पर

बंधी रहती है नावें/क्या अब भी संगीत सा

गूंजती रहती है उनके चप्पुओं की आवाज?'' [8]

सुरेश सेन निशांत इस स्वाभाविकता के कारण समाप्त होने वाले मल्लाह समुदाय का जीवन में आए संकट की ओर ध्यान दिलाते हैं। विकास के नाम पर सड़कों एवं पुलों के निर्माण ने पहाड़ी जन-जीवन को एक ओर सुगम बनाया है तो वहीं बाजारवाद ने इनके स्वाभाविक जीवन को नष्ट-भ्रष्ट किया है। इससे उनके जीवन का राग तत्त्व लुप्त हो गया है। इसी लुप्त होते राग तत्त्व को निशांत जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से खोजने की कोशिश की है।

पर्वतीय लोक जीवन के इस संघर्ष में कहीं भी निराशा और अनास्था नहीं है, यहां आशा और आस्था की किरण विद्यमान है। वे बर्फबारी के दिनों के लिए उस उपले को सइत और सम्भाल कर रखे हुए हैं। मानो उपले नहीं, मानवीय जीवन-मूल्यों को बचाकर रखा है। वर्षों से जो मनुष्य की मूल्यवान निधि है, उसके भविष्य के लिए यह मानव सभ्यता के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगी, जिससे मानव जीवन सुगम, स्वाभाविक और सहज होगा। वे अपनी कविता 'उपले' में प्रतीकात्मक रूपक गढ़ते हुए पर्वतीय लोक जीवन के संघर्षों को चित्रित करते हैं, जिसमें आशा और आस्था के द्वार खुलते दिखाई देते हैं :

''बहुत ज़रूरी चीज़ों की तरह/इन उपलों को भी / रखेगी वह सहेजकर

बर्फ़बारी जैसे कठिन दिनों के लिए

रोटी पकाते हुए / चूल्हे के दूसरी तरफ

लकड़ियों के संग इनका होना/उस औरत को ढाँढ़स बँधाता रहता है

कि बसन्त आएगा/पीड़ा भर पतझर गुज़र जाने के बाद/जरूर।''[1]

कवि निशांत जी इन पहाड़ी लोक जीवन के लोगों की मनोवृत्तियों को अपनी कविता 'हम' के माध्यम से चित्रित करते हैं। यहां पहाड़ी सभ्यता के लोग मानव सभ्यता को सुन्दर बनने के लिए उसमें रस और आत्मीयता का संचार करने हेतु जीवन में शहद घोलना चाहते हैं। वे लिखते हैं :

" हम शहद बाँटना चाहते हैं / अपनी मेहनत का।
मधुमक्खियों की तरफ / हजारों मील लम्बी और कठिन है
हमारे जीवन की भी / यात्राएँ।'' [10]

सुरेश सेन निशांत के अभिन्न मित्र आत्मारंजन जी उनके लोकधर्मी कवि की छवियों को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, ''निशांत मूलतः जनपदीय या लोकधर्मी कवियों की श्रेणी में आते हैं, अतः उनकी प्रतिबद्धता भी इस संघर्षशील पर्वतीय लोक मानुष के हित का माध्यम है, बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि उनकी वैचारिक-प्रतिबद्धता की विशेषता उनकी लोकधर्मी चेतना का ही हिस्सा या विकास है।''[11]

इसीलिए निशांत जी की कविताओं में लोक के इसी संघर्षशील जीवन के अंतरंग संबंधी जुड़ाओं व उसकी ठेठ एवं प्रामाणिक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इस लोक जीवन में कहीं सेब की मिठास है तो कही दुख एवं पीड़ा की आह, कहीं पहाड़ी जीवन की विसंगतियाँ जैसे बर्फबारी व दुगर्म रास्ते हैं, तो कहीं जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्षरत मनुष्य की छवियां हैं। कहीं कोई स्त्री दो जून का भोजन तैयार करने के लिए उपलों को सइत कर रखने के लिए विवश है, इसकी पहचान के लिए उसके जीवन के संघर्षों में छपे खुरदुरी अँगुलियों के निशानों को देखा जा सकता है। वे इसे रेखांकित करते हुए लिखते हैं :

"धूप में सूखते हुए / इन उपलों के चेहरों

पढ़ी जा सकती है / उस औरत के संघर्ष भरे/ दिनों की कथाएँ।

खुरदुरी हथेलियों का / प्यार भरा स्पर्श।

कठुआई अँगुलियों की थकान /पिछले दिन चुभे / काँटो का दर्द भी

देखा जा सकता है /सूखते हुए इन उपलों के चेहरों पर।''[11]

पहाड़ी लोक जीवन की विसंगति को चित्रित करते हुए कवि निशांत जी उस श्रमिक स्त्री की पीड़ा को रेखांकित करते हैं जो नित प्रति अपने काम के लिए घर से दूर पैदल दुर्गम पहाड़ियों पर जाती है। इसी सम्बन्ध में एक श्रमिक स्त्री जो ढाँक से घास लाने जाती थी, वह आज ढांक से गिरकर मर जाती है। इस दृश्य को देखकर उसकी सखी विलाप करती है तथा वहाँ के पहाड़ी जीवन के संघर्षों, पीड़ाओं एवं विसंगतियों को रेखांकित करती है। कवि ने अपनी इस कविता 'ढाँक से फिसल कर मृत हुई सखी से विलाप करती एक स्त्री' में उस स्त्री का अपनी सखी के प्रति अभिव्यक्त पीड़ा को दर्ज किया गया है। वे लिखते हैं :

"सोई रहो सखी / भूल जाओ / पिछले दिन चुभे/पाँव में काँटों की पीड़ा

बुखार में तपी/देह का दर्द / एकान्त में हुई / वह बदसलूकी भी।" [12]

यहां श्रमिक स्त्रियों की पीड़ा केवल एक पीढ़ी की नहीं है, अपितु उसकी सभी पीढ़ियाँ इसे भोगने के लिए अभिशप्त हैं। यही उनकी आजीविका का साधन है, माध्यम है जिससे उनका जीवनयापन होता है। ऐसी श्रमिक स्त्रियों के खाते में केवल श्रम हेतु परम्परा में यही 'दराती' और 'गाची' प्राप्त होती है, जिसे वह जीवन भर धोने के लिए अभिशप्त हैं। सखी विलाप करते हुए उसकी अभिशप्त पीड़ा को अभिव्यक्ति देती है और साथ ही अपनी सखी के मरने के बाद उसकी 12 साल की बेटी इस कार्य को करने के लिए अभिशप्त है, को बताती है। इस ओर न सरकार की नजर है न ही किसी और की। यह बाल शोषण किसी और बच्चे के बचपन को न छीन ले, इसके लिए इस लोकतांत्रिक देश में कोई भी उपाय नहीं है। वह इसी तरह परम्परा का

निर्वहन करने को विवश हैं, यह कविता इन्हीं लोकतंत्र की विसंगतियों, उसकी योजनाओं एवं नीतियों के प्रति प्रश्नचिह्न खड़ा करती है। सुरेश सेन निशांत लिखते हैं :

"सोई रहो सखी / तुम्हारी दराती और गाची
रख ली है सम्भालकर / तुम्हारी बारह वर्ष की बेटी ने।"[13]

इस पहाड़ी जीवन में इन पीड़ाओं एवं दुःखों से मुक्ति मृत्यु के बाद ही सम्भव है। ढाँक से गिरकर मरना जहाँ एक त्रासदी है- पहाड़ी जीवन की, वहीं इस यथास्थितिवाद के प्रति व्यंग्य व प्रतिरोध भी है। वे आगे लिखते हैं :

"कल से / वही सम्भालेगी घर/कल से वही ढोएगी
तुम्हारे हिस्से का बोझा/और चिंताएँ/कल से वही जाएगी
उस ढाँक तक लाने घास/जहाँ से फिसली थी तुम।"[14]

ढाँक से गिरकर मरना पहाड़ी जीवन की एक त्रासदी है। साथ ही यह पहाड़ी स्त्री के श्रम, संघर्ष और जीविविषा की महागाथा भी है। यह कविता पाठकीय संवेदना को मार्मिकता के साथ जोड़ती है तथा उस यथास्थितिवाद का प्रतिकार करती है जिसे जीने के लिए पहाड़ी स्त्रियां अभिशप्त हैं। कवि निशांत इन्हीं पहाड़ी स्त्री की इस पीड़ा के प्रति मुखर प्रतिरोध दर्ज कराते हैं। वे 'देवी' कविता में प्रश्नचिह्न खड़ा करते हैं कि धार्मिकता के आड़ में किस प्रकार हमारी सामाजिक व्यवस्था विभिन्न अन्धविश्वासों एवं प्रप्रंचों के माध्यम से अपने लालच की आपूर्ति करती है। इसी का चित्रण इस कविता में मिलता है। पहाड़ी स्त्रियां देवी से प्रश्न करती हैं :

"क्या तुम्हारे अन्दर भर गई है लालच की प्यास?
क्या तुम्हें भी भर देती है हिंसक आनन्द से
भय से भरे जानवर की निरीह चीख।"[15]

'देवी' कविता भी हिमाचल प्रदेश के लोक जीवन में अन्तर्निहित धार्मिक अन्धविश्वास एवं आडम्बर को रेखांकित करती है। वह धर्म के ठेकेदारों की मानसिकता को भी उजागर करते हुए किस प्रकार सरकारी कर्मचारी काम के एवज में धन के साथ-साथ दारू, मुर्गी और औरत के जिस्म की फरमाईश करते हैं। इस कटु एवं जटिल यथार्थ को यह कविता अभिव्यक्ति देती है।

सुरेश सेन निशांत की जनवादी चेतना के विकास का आधार भारत की लोकतांत्रिक प्रणाली है। सुरेश सेन को लोकतंत्र एवं जनतंत्र के प्रति गहन आस्था एवं विश्वास है। वह इस जनतंत्र एवं लोकतंत्र से अपेक्षा रखते हैं कि इससे अपने देश में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में समता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व का साम्राज्य हो। इसीलिए वह लोकतंत्र में समानता, स्वंतत्रता, बन्धुत्व के आकांक्षी हैं। सुरेश सेन निशांत सबसे बड़े लोकतंत्र के नागरिक है, अत: उनकी कविता में इस लोकतंत्र की छवि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। सुरेश सेन निशांत ने पहाड़ी जन-जीवन, वहाँ के सुख-दुख को रेखांकित किया है, साथ ही उनकी कविताओं में स्त्री-जीवन को भी केन्द्र में रखा है। उनकी कविताओं में स्त्री-जीवन की विविध अवस्थाओं में हो रहे परिवर्तन को रेखांकित किया गया है। सुरेश सेन निशांत इस सृष्टि को सुन्दर बनाने में स्त्री को सबसे महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वे उनके प्रति सम्मान का भाव रखते हैं।

निशांत द्वारा अंकित/चित्रित कविताओं में स्त्री जीवन के विविध रूप मिलते हैं- 'पोछा लगाना', 'तस्वीर में माँ', 'चालीस पार जाती हुई स्त्री', 'मंदिर से लौटती औरतें', 'नदी पार करती लड़की, बूढ़ी स्त्री, पहाड़ की बेटियाँ', 'वह औरत', 'पहाड़ी लड़की की हँसी', 'कोक पीती हुई वह भिखारिन लड़की', 'कागज-फूल बनाने वाली लड़की,' 'देवी, 'लड़कियाँ,' 'ढाँक से फिसलकर मृत हुई सखी से विलाप करती एक स्त्री', 'माँ की कोख में', 'काम पर लड़की,' 'उपले, 'इस वृक्ष के पास से', 'रोती हुई लड़की', 'वह पाँच पढ़ी लड़की', 'चालीस

पार जाती हुई स्त्री' इत्यादि कविताओं के माध्यम से उन्होंने स्त्री जीवन की विविध छवियों का अंकन किया है जिसके केन्द्र में श्रमशील स्त्री का चित्रण है। निशांत जो 'लड़कियाँ' के माध्यम से वहाँ के लोकजीवन की विषमताओं को बताते हुए उसे आधुनिक विसंगतियों से जोड़ते हैं।

'भ्रूण हत्या' वर्तमान समय की ज्वलंत समस्या है, इसके कारण मानव सूचकांक में स्त्री-पुरुष के अनुपात में भारी अन्तर आ रहा है। इसीलिए कवि सुरेश सेन निशांत भ्रूण हत्या के कारण महिलाओं पर हो रहे अत्याचार पर अफसोस दर्ज कराते हैं। वे लिखते हैं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में लड़कियों को न समानता का अधिकार है और न स्वतंत्रता का, उन्हें सदैव भय, पाप-पुण्य इत्यादि के बीच संस्कारित किया गया है, जिससे वह अपने अधिकार न मांगें। इस सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था ने लड़कियों के महत्व को नकार दिया है। वे लिखते हैं :

''बेचारी लड़कियाँ तो हमारे डर से/रुखसत हो गयी हैं कभी की
माँ की कोख से ही/किसी दूसरी अंधेरी दुनिया के लिए।''[16]

भारतीय समाज में लिंगभेद बहुत बड़ी समस्या रही है। क्योंकि पुरुष को समाज में शक्तिशाली माना जाता है, वहीं स्त्री का स्वरूप मर्यादाशील, लज्जायुक्त इत्यादि से सम्पन्न माना गया है। इसीलिए पुरुष को धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थानों पर कम महत्व दिया गया है। स्त्री को भारत में देवी या महादेवी की गरिमा से युक्त माना जाता है लेकिन उसे मनुष्य मानने से इनकार किया जाता है, यह एक विडम्बना है। इसे हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में देख सकते हैं।

कवि सुरेश सेन लड़कियों का इस तरह दिन-प्रतिदिन अचानक गायब हो जाना और पुरुषों का यह पाखण्ड करना कि उन्हें पता ही नहीं है, इस समाज की तुच्छ हरकतों की ओर

इशारा करते हैं। कवि इस ढोंग और पाखण्ड को जानने की कोशिश करते हुए इसका पर्दाफाश करते हैं। वह लिखते हैं :

‘‘उनकी बोलचाल का ढंग/गोर्की की माँ जैसा था
असद जैदी की बहनों की तरह/डरी डरी चलती थीं वे सड़कों पर
आलोक धन्वा की कविता से निकली/लड़कियाँ थीं वे
जो बार-बार आती छतों पर/हमारे लिए प्यार लेकर।
कभी-कभी वे कचरे के ढेर के पास/दिख जाती थी भगवत रावत की
कचरा बीनने वाली लड़कियों की तरह।/कभी-कभी वे यतीन्द्र मिश्र की
कविता में खड़ी मिल जाती थी/उस उदास वेश्याओं-सी सिसकते हुए
सुनाती हुई अपनी व्यथा/दिखाती हुई देह और मन का जख़्म
पता नहीं कहाँ खो गई वे सभी?’’[17]

कवि उन लड़कियों के अचानक गायब हो जाने पर अफसोस करते हैं। वे उस तमाम समाज एवं मनुष्य के ढोंग व ढकोसलों को उजागर करते हैं और उनकी लड़कियों के प्रति उदासीनता के लिए उन्हें विस्तृत नजरों में देखते हैं। लड़कियों के वह इस तरह समाज की धरती से विलुप्त होना अत्यन्त दुखद मानतें है। इस दयनीयता को रेखांकित करते हुए वे प्रश्न पूछते हैं:

‘‘सुई जितनी छोटी तो नहीं थीं / कि खो जाने पर नहीं मिलतीं
फिर भी लड़कियाँ है कि मिल नहीं रहीं /उन भूरी घरू चिड़ियों की तरह
जो विलुप्त हो गयी हैं /गंगा के आस-पास वाले इलाकों से।
पर वे चिड़ियाँ नहीं थीं /वे आकाश गंगा की तारा भी नहीं थी
खत्म हो गया हो उनका वजूद।’’[18]

सुरेश सेन निशांत इन लड़कियों पर गहराते अस्तित्व संकट-बोध को उस गौरेया चिड़िया के माध्यम से बताते हैं। कवि इन लड़कियों की सजीवता को प्रकृति के अन्य उपादानों में नहीं ढूंढ पाता। इसीलिए वह चिंतित है कि ये लड़कियां न तो इस पृथ्वी पर भार थीं, न बोझ, न काँटा अर्थात वह हमारे लिए समस्या नहीं थीं फिर भी हम उन्हें ढूंढ नहीं सके। कवि अपनी स्मृति में उनको गंध के माध्यम से याद करता है और कहता है कि वह लड़कियां फूल-सी कोमल थीं जिनके होने मात्र से मानवीय जीवन दमकता और महकता था, आज उनकी अनुपस्थिति से एक दहशत का माहौल बन गया है। निशांत लिखते हैं :

" वे काँटे भी नहीं थीं कि उन्हें हटाकर
साफ हो गयी हों हमारी राहें
वे फूल-सी कोमल लड़कियाँ थी/जिनके होने से
महकती थी हमारी साँसे
दमकता था जिन्दगी का चेहरा।"[19]

यह वह स्त्रियां हैं जहाँ अभी तक स्त्री-वादियों की दृष्टि नहीं पहुँच न पायी है। इसीलिए सुरेश सेन निशांत उन स्त्रियों के महत्व को केंद्र में लाते हैं। जो समाज के लिए जीवनदायी हैं, उनके महत्व को वे रेखांकित करते हुए मनुष्य जीवन के लिए उपयुक्त मानते हैं। वे लिखते हैं :

"क्योंकि हमें पता है/लड़कियों की देह में है
नमक का विशाल समुंदर
जो बचा सकता है हमें असमय मरने से।"[20]

सुरेश सेन निशांत अपने समय की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को देखते हैं, पहचानते हैं। इसीलिए वह समाज की तत्कालीन समस्याओं को रेखांकित करते हुए समाज को जागरूक बनाते हैं। वे अपनी कविता 'काम पर लड़की' के माध्यम से एक दस वर्ष की लड़की की श्रम-

गाथा की त्रासदी का वर्णन करते हैं, जिसका बचपन इस समाज ने छीन लिया है। भारत एक लोकतांत्रिक देश है, जहाँ पर18 वर्ष से कम आयु के बच्चों से कोई काम नहीं कराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उनके लिए 14 वर्ष की आयु तक नि:शुल्क शिक्षा का प्रावधान है तथा उनके पढ़ने-लिखने की व्यवस्था करना सरकार का उत्तरदायित्व है। लेकिन इस लोकतंत्र में लोकतांत्रिक मूल्यों एवं मानवीय मूल्यों का गला इस प्रकार घोंटा जा रहा है कि लोकतंत्र के नाम पर हमें संदेह होता है। इस कविता में सुरेश सेन निशांत उस बच्ची के बचपन की आयु में घटित होने वाली घटनाओं के माध्यम से करते हैं। वे इस कविता के माध्यम से बताते हैं कि एक दस वर्ष की लड़की काम पर जा रही है। उसके शरीर में उदासी भरी थकान है, आँखों में टूटी हुई नींद है तथा उसके मन में सपने तैर रहे हैं, सपने में उसे गुड़ियों के कपड़े सिलने थे। कवि इन सभी बाल सुलभ स्थितियों का चित्रण करके यह बताना चाहते हैं कि दस वर्ष की आयु जिसमें स्वप्न देखना, खेलना, बालोचित क्रीड़ाएं करना बालक-बालिकाओं का स्वभाव होता है, उस स्थिति में ये बच्चे अपनी-अपनी स्वाभाविकता से कोसों दूर चले जा रहे हैं। अब बचपन की स्वाभाविक चेष्टायें केवल सपना बन कर रह गयी हैं। जहाँ पहले माँए अपने बच्चे को गोद में लेटाकर थपकी देर कर सुलाया करती थीं, अब वही बच्चे अपने बचपन को त्यागकर जिम्मेदारियाँ संभालना सीख गये हैं। कवि ऐसे बच्चों एवं बच्चियों से छीनते बचपन के प्रति खेद व्यक्त करता है और उनकी गरीबी उनके बचपन को किस प्रकार छीन रही हैं, को दिखाते हैं :

> "दस बरस की लड़की काम पर/जा रही है काम पर
> फिल्लियों में है उदास थकान/आँखों में टूटी हुई नींद
> सपने तैरते हुए/सपनों में/अपनी गुड़िया के कपड़े
> सिलने थे उसे/बिखरी पड़ी थी किताबों/उन्हें समेटना था।" [21]

वह अभी सोच रही थी कि उसे सहेलियों के साथ खेलना और गाना-गाना है, जीवन में तितलियों और पक्षियों की तरह उड़ना है क्योंकि गरीबी और व्यवस्था ने उसका बचपन छीनकर उसे 10 वर्ष की ही आयु में ही उसे यथार्थ की भूमि पर ला खड़ा किया है। उसे समय के थपेड़ों ने कम उम्र में ही अनुभवी बना दिया है, जिस उम्र में हँसी, खुशी और प्रेम की आवश्यकता होती है, उस स्थिति में व्यवस्था ने उसे धीर, गम्भीर, जागरूक और उम्र से बड़ा बना दिया है। इस संबंध में कवि निशांत जी लिखते हैं :

''अभी बसन्त उतरने को ही था
पतझड़ ने उतार दिये पत्ते सारे/टूट गई नींद।

--- --- ---

कोई नहीं कहता उसे/सो नहीं पायी तुम
रात भर खाँसी से/तपा हुआ है अब भी तुम्हारा माथा
रह जाओ घर पर/आज तनिक।'' [22]

सुरेश सेन निशांत इस कविता के माध्यम से हो रहे बाल श्रम शोषण की समस्या को तो दिखाते हैं। साथ ही बचपन में अनाथ होने की पीड़ा और प्यार से वंचित हो जाने की त्रासदी को भी उजागर करते हैं। राजेश जोशी अपनी कविता- 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' के माध्यम से इसी प्रकार की बाल श्रम शोषण संबंधी समस्या को उजागर करते हैं। राजेश जोशी बच्चों के काम पर जाने की खबर को केवल विवरण की तरह छापे जाने से उस पूरी मीडिया व्यवस्था के प्रति खेद व्यक्त करते हैं, जिसका काम सच्चाई को उजागर करना है। वह इस मीडिया की उदासीनता में हतप्रभ है। क्योंकि बच्चों का काम पर जाना लोकतांत्रिक समाज का सबसे ज्वलंत सवाल है। वे लिखते हैं :

''बच्चे काम पर जा रहे हैं

हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह

भयानक है इसे विवरण की तरह लिखना

लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह कि

काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?''[23]

राजेश जोशी इस कविता के माध्यम से मीडिया का प्रमुख समस्याओं से हटते नजरिये को, उसके दृष्टिकोण पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं। राजेश जोशी बच्चों को देश का भविष्य मानते हैं, वे अपने देश की उन्नति के लिए बच्चों का खेलना, पढ़ना, स्वप्न देखना इत्यादि जरूरी मानते हैं। वे लोकतंत्र के मूल्यों के प्रति तेजी से बढ़ती उदासीनता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि यह बाल शोषण की प्रक्रिया देश के भविष्य को नष्ट-भ्रष्ट कर देगी। यह भारतीय संविधान में अपराध की श्रेणी में आता है, लेकिन इस लोकतांत्रिक मूल्य का पालन अभी भी नदारद है। वे लिखते हैं :

''क्या अंतरिक्ष में गिर गई हैं सारी गेंदें/क्या दीमकों ने खा लिया है

सारी रंग बिरंगी किताबों को /क्या काले पहाड़ के नीचे दब गये हैं सारे खिलौने

क्या किसी भूकम्प में ढ़ह गई है / सारे मदरसों की इमारतें

क्या सारे मैदान, सारे बगीचे और घरों के आँगन

खत्म हो गये है एकाएक / तो फिर बचा ही क्या है इस दुनिया में?''[24]

यह कितनी दयनीय और विड़म्बनापूर्ण बात है कि बच्चे काम पर जा रहे हैं। यह भयानक होते हुए भी त्रासदपूर्ण है। सुरेश सेन निशांत बालश्रम शोषण की समस्या को तो उजागर करते हैं। साथ ही 'कागज़-फूल बनाने वाली लड़की' के माध्यम से यह दिखाते हैं कि किस प्रकार स्वाभिमान से गरीब लोग अपना जीवनयापन करते हैं। इस गरीब जन में एक पाँच वर्ष

की लड़की का चित्रण कवि निशांत जी ने अत्यन्त मनोरम ढंग से किया है। वह पाँच वर्ष की लड़की इस छोटी-सी उम्र में कागज का फूल बनाने में पारंगत हो गयी है। निशांत लिखते हैं :

''भीख नहीं माँगते/कागज के फूल बनाते हैं
वे सब जन/छोटी की पाँच वर्ष की बच्ची भी/फूल बनने में माहिर।
यही है उसका खेल / यही है उसकी पढ़ाई / यही है उसकी पाठशाला
इस छोटे से तम्बू में / फूल बनाती हुई इस बच्ची की।
बहुत दूर है उससे/आसपास चहचहाते इन परिंदों का शोर।''[25]

सुरेश सेन निशांत ने इस कविता में उस हाशिए के समाज का चित्रण किया है। उन्होंने जवाहर पार्क और उनके अस्थाई तम्बू के प्रतीकात्मक प्रयोग द्वारा इस लोकतंत्र की विसंगतियों को उजागर किया है। उस पार्क में नेहरु जी की मूर्ति है, यह मूर्ति उस तम्बू के प्रति उसी प्रकार तटस्थ और उदासीन है, जिस प्रकार यह व्यवस्था हाशिए के समाज के प्रति तटस्थ है। लोकतांत्रिक व्यवस्था की यह उदासीनता आज की भयावह त्रासदी है, जिसे कवि इस तरह से रेखांकित करते हैं :

''बहुत दूर हूँ उससे/शायद मैं भी/उसके प्रति मेरी फिक्र भी
मेरा प्यार भी उतना ही दूर है/उतना ही चुप/जितना चुप और दूर
है उससे नेहरु /उनके तम्बू के पास / मूर्ति बन खड़े हुए।"[26]

वे लिखते हैं कि गरीब बच्ची का इस प्रकार अपना काम निपटने की प्रथा आजादी के बाद से चला आ रहा है, वह अपने बचपन की बाल सुलभता को छोड़ कर पाँच वर्ष की आयु में ही प्रौढ़ हो गयी है। कवि निशांत जी लिखते हैं :

''पिछले साठ सालों से/उसके हिस्से के खेल
कोई और ही खेल रहा है/वह तो अपने हिस्से के काम

निपटा रही है/ इस पतझर में / बना रही है/कागज के फूल।''[27]

निशांत जी ने कोक पीती हुई उस भिखारिन लड़की के माध्यम से एक गरीब लड़की की छवि का चित्रण किया है, जिसमें बाज़ारवाद आज किस तरह से उनके मन पर हावी हो रहा है। वह भिखारिन लड़की अपनी मन की एक छोटी-सी इच्छा की पूर्ति के लिए न जाने कितनी समस्याओं से उसे जुझना पड़ता है। इस बाजारवाद ने किस प्रकार से कोक जैसी वस्तु ने एक श्रमशील जीरा बेचने वाली युवती के व्यवसाय को तहस-नहस कर दिया है, कवि ने उसे रेखांकित करते हुए लिखा है :

"उदास है तो बस/जल जीरा बेचने वाला
अपनी रेहड़ी के पास खड़ा वह।"[28]

बाज़ारवाद के विस्तार से पूँजीपतियों ने उन गरीब और मध्यमवर्गीय लोगों को अपने बाजार का केन्द्र बनाया है, जिससे सड़कों पर रेहड़ी लगाने वाले, छोटे-छोटे व्यवसाय करने वाले हस्त-उद्योगियों को तहस-नहस कर दिया है। इस कविता में भिखारिन लड़की जो कोक पीती हुई सड़क पर जा रही है, उस पर विज्ञापनों पर पड़ने वाली धूप भी व्यंग्य मलिन उपहास कर रही है। बाजारवाद किस प्रकार तेजी से फल-फूल रहा है तथा छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों को लीलता जा रहा है, जिससे आमजन निरंतर गरीबी की खाई में गिरता जा रहा है। इससे दिन-प्रतिदिन गरीबी और अमीरी के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। कवि निशांत जी इसे चित्रित करते हुए लिखते हैं :

''मुस्कुरा रही है / ढेर सारे गर्व से
विज्ञापनों पर गिरती धूप
उसे कोक पीता देख / मुस्कुरा रहे हैं
नायक नायिकाओं के

मासूमियत ओढ़े क्रूर चेहरे।

इस तपती धूप में भी/हरी हुई जा रही है

बाजार की तबीयत।''[29]

सुरेश सेन निशांत की कविताओं में स्त्री-जीवन का अंकन किसी विचार या विमर्श के कारण नहीं, अपितु स्वाभाविक रूप में हुआ है। निशांत जी 'वह पाँच पढ़ी औरत' के माध्यम से पूरी पितृसत्तात्मक व्यवस्था किस प्रकार उस पांच पढ़ी लड़की से पुरुष समाज आशंकित और भयभीत है कि वह इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति चुनौती पेश न कर दे, कवि पुरुष-समाज के इसी मनोभावों को रेखांकित करता है, पुरुष समाज का संशय और डर आने वाली व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं। निशांत लिखते हैं :

"मेरे गाँव की / उस पाँच पढ़ी औरत ने

माँगी मुझसे मेरी कविता की किताब

किसी आलोचक को देते हुए/कभी नहीं डरा

नहीं डरा किसी /किसी कवि को भेंटते हुए

उस पाँच पढ़ी औरत से डरा मैं/मैंने डरते-डरते दी उसे

अपनी कविता की किताब।''[30]

यह डरने की मानसिकता ज़ाहिर करती है कि न केवल कवि, बल्कि पूरा पुरुष-समाज इस व्यवस्था के प्रति यथास्थितिवाद का समर्थक है, वह यह नहीं चाहता कि स्त्री-समाज शिक्षित हो और अपने अधिकार की माँग करें। कवि इनका समर्थन करते हुए इस व्यवस्था को बदलना चाहता है। कई वर्षों से समानता और शिक्षा का अधिकार, स्वतंत्र रूप से जीने का अधिकार से वंचित वह अपनी बुद्धि और विवेक से एक पुरुष के लिखे का मूल्यांकन करेगी। कवि लिखते हैं :

''दिन भर के काम-धाम के बाद/दीये की मद्धिम लौ में

मेरी किताब के पन्नों खोलेगी

कोई आलोचक या कवि नहीं वही तय करेगी मेरी हैसियत

माँगी थी जिसने मुझसे/मेरी कविता की किताब।''[31]

सुरेश सेन निशांत 'देवी' कविता के माध्यम से उस समाज की ओर इशारा करते हैं जिसमें स्त्रियों का धर्म के ठेकेदार, पुजारी, गाँव के पटवारी और हाकिमों द्वारा अलग-अलग प्रकार से मानसिक एवं दैहिक शोषण किया जाता है। निशांत देवी की पूजा के बहाने स्त्री के हो रहे शोषण की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं :

''यहाँ तो छोटे काम के लिए / पटवारी माँगता है मुर्गा

माँगता है शराब की बोतल/माँगता है नशे में हमारा जिस्म

जंगलाती बाबू और / उसके बड़े अफसरों

के नशे को / दो गुना कर देती है

उनके सामने गिरी / कठिन पहाड़ों पर फली/हमारी यह देहें

हम उनके लिए हाँडती फिरती

जिंदा औरतें नहीं / शिकार हुए/

चीतलों का लजीज माँस हो जैसे ''[32]

यहाँ सुरेश सेन निशांत इस पहाड़ी लोक जीवन में स्त्री की छवियों का तो चित्रांकन करते है, साथ ही उन स्त्रियों के प्रतिरोध के स्वरों को भी उजागर करते हैं। ये स्त्रियां इस प्रकार के शोषण से बचाना चाहती हैं, जिस्म की नुमाइश और फ़रमाइश का सख्ती से प्रतिकार करती हैं। वे अपने विवेक और बुद्धि को धार देने के लिए संघर्षरत हैं तथा धरती को भी बचाने का प्रयास करती हैं। इस संबंध में कवि लिखते हैं :

"हम इन तेज़ दरातियों से बचाएंगी/धरती के हरेपन को / इसके वस्त्रों को
हम बचाएंगे धरती को /नग्न होने से/क्योंकि हम समझती हैं
नग्न होने की पीड़ा/हमने भोगा है / देह को नीचे जाने का दुख
इसीलिए हम समझती हैं/क्षत-विक्षत इस धरती का भी दुख
बुखार से कांपती /इस धरती के तपे माथे पर/रखती हैं जब हम हाथ
हम सुनती हैं इसकी ही नहीं/अपनी भी सिसकियाँ।"[33]

इसी कारण कवि नारी और धरती के प्रति प्रतिबद्धता जाहिर करते हुए लिखते हैं :

"हमारा पेड़ों से वादा है /और वादा है अपनी बेटियों से भी
हम उन्हें नहीं होने देंगी उदास/हम नहीं कटने देंगी।
उनकी और अपनी देहों को।"[34]

सुरेश सेन निशांत 'नदी पर करती हुई लड़की' के माध्यम से एक पहाड़ी लड़की के संघर्ष को रेखांकित करते हैं। वह लोकतंत्र की विसंगतियों पर सरकार का ध्यान न जाने की स्थिति से बेचैन हैं। पहाड़ी लड़कियाँ इन जर्जर पहाड़ों से गुजरने के लिए अभिशप्त हैं। विकास के नाम पर पुल तो बनाया गया है लेकिन अब उसकी अवधि समाप्त हो गई है। इस पुल के निर्माण के कारण उन नाविकों की रोजी-रोटी को धक्का लगा है। यहाँ कवि ने प्रश्न उठाया है कि विकास के नाम पर सड़कों, पुलों का निर्माण तो ठीक है लेकिन इन छोटे श्रमिकों का क्या हो जो मछली मारकर अपना जीवनयापन करते हैं। वे लिखते हैं :

"हर रोज / खेलना ही होता है
उसे यह ख़तरनाक खेल / पहुँचना होता है स्कूल।

---------- ---------- ----------

पता है उस लड़की को/अगर हाथ से छूट गई/या टूट ही गई कभी

वह लोहे की जंग लगी तार/तो गिर जाएगी वह नदी में

जहाँ पत्थरों के बीच/पानी के तेज़ बहाव में/तैर नहीं पाएगी वह।''[35]

सुरेश सेन निशांत 'माँ की कोख में' की कविता के माध्यम से यह रूपक गड़ते हैं कि माँ की खोज में हिलता बच्चा सजीवता और चेतनता का प्रतीक है।

निशांत हिमाचल प्रदेश के सुदूर स्थित पर्वतीय लोक जीवन के गायक कवि हैं, जिन्होंने पहाड़ी लोक जीवन की करुणगाथा एवं पीड़ा, सुख- दुख इत्यादि को सहा और भोगा है, उसी की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में मिलती है। हिमाचल प्रदेश के लोक जीवन में विस्थापन की समस्या उसकी भौगोलिक स्थिति है। साथ ही वहां विकास के नाम पर बनाई गयी योजनायें भी विस्थापन के लिए महत्त्वपूर्ण कारण हैं। सुरेश सेन निशांत की पीड़ाओं का केन्द्रबिन्दु विस्थापन की समस्या है, जिसके कारण वहाँ के लोग अपनी मातृभूमि से कट रहे हैं। इस कटाव के कारण उनमें एक ओर पीड़ा और दुख की अनुभूति है और दूसरी ओर अकेलेपन की त्रासदी है। सुरेश सेन निशांत 'पहाड़ पर एक और सीमेंन्ट फैक्टरी लगने पर' कविता में वहाँ के लोगों की व्यथाओं पर प्रकाश डालते हैं। इनकी पीड़ा इतनी व्यथित करने वाली है कि इसे वहाँ की प्रकृति भी महसूस करती है। वे लिखते हैं :

"हम चले आए हैं/अपना घर अपनी धरती छोड़

धरती देर तक निहारती रही/हमें टुकर-टुकर

नहीं हिलाये उसने हाथ/नहीं रोई वह दहाड़ मार कर

बस पड़ी रही/जैसे सोई हो/बेसुध नग्न

हमारी माँ जैसी/कोई औरत।''[36]

हिमाचल प्रदेश का पर्वतीय इलाका गुजरात के पूर्वोत्तर में स्थित है जहाँ एक ओर हिमाचल प्रदेश का लोक जीवन अनेक प्रकार की कठिनाइयों से भरा है, जीवन की मूलभूत

आवश्यकताओं जैसे भोजन, पानी आदि के लिए संघर्ष करना पड़ता है, बर्फ़बारी की मार से किसानों की फसलें नष्ट हो जाती हैं, वहीं दूसरी ओर विकास के नाम पर लागू की गई नीतियां से मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति का अभाव है। इसीलिए लोग रोजगार की तलाश में अपने मूल स्थान से पलायन करते हैं। कवि भी अपने लोगों को गुजरात भेजते हुए 'गुजरात' कविता में लिखते हैं :

"गुजरात ! मैं अपने बेटे को/इन पहाड़ों से दूर, इन दुःखों से दूर
इन जर्जर पुलों और/इन उबड़-खाबड़ रास्तों से दूर
तुम्हारे पास भेज रहा हूँ /तुम इसका खयाल रखना।
गुजरात ! मैं उसे यहाँ से कभी नहीं भेजता
अगर सेब के ये पौधे/किसी अंजान बीमारी से न सूखने लगते
मैं उसे यहीं जीने के लिए उकसाता/अगर इन पहाड़ों के जिस्म को
छलनी नहीं करते/हमारे कुछ अपने लोग
हमारे सपनों को कर रहे हैं/वे कर रहे हैं तहस-नहस
पूरे पहाड़ की हरियाली को हमारी खुशियों"

सुरेश सेन निशांत का मानना है कि औद्योगिकरण के कारण आमजन और आदिवासियों तक का विस्थापन हो रहा है। विस्थापन की यही मार्मिक अभिव्यक्ति उनकी कविता में दिखाई देती है। वह 'पहाड़ पर एक और सीमेंट फैक्ट्री लगने पर' कविता में फैक्टरी निर्माण के नाम पर किस प्रकार वहाँ के मूल निवासियों को जबरदस्ती विस्थापित किया जा रहा है तथा उन्हें इस भूमि को छोड़ने का उचित मुआवजा भी नहीं दिया जाता है और न ही उनसे पूछा जाता है कि क्या वह इस स्थान को छोड़ने के लिए राज़ी हैं ? यदि वह मना करते हैं तो पूँजीपति एवं सरकारी

ठेकेदार जोर आजमाइश का प्रयोग करके उन्हें विस्थापित होने के लिए मजबूर करते हैं। सुरेश सेन निशांत इस सम्बन्ध में लिखते हैं :

"हम रोएंगें/वे हमें चुप कराने के लिए
वे हमारी देह थपथपायेंगे/विस्थापन की एवज में दिए
पैसे से/झूठे सांत्वना भरे शब्दों से।"[38]

सुरेश सेन निशांत उपर्युक्त स्थिति के बाद आमजन और आदिवासी किसानों की स्थितियों को बताते हैं कि वह किस प्रकार अपने खेतों और कुटीर उद्योगों को छोड़ने के लिए विवश हैं। उनकी भी पीड़ा को रेखांकित करते हुए लिखते हैं :

"हम किसी पहाड़ पर /बाँसुरी बजाते हुए नहीं
किन्हीं खेतों में हल चलाते हुए नहीं/हम किसी ट्रक पर से
सीमेंट चढ़ाते या उतारते हुए मिलेंगे/ओस की बूँदो से नहीं
सीमेंट की धूल से /भरी पड़ी होगी हमारी देहें/हम खास रहे होंगे
डॉक्टर हमारी मृत्यु का कारण/तपेदिक बताएगा/एक दिन।"[39]

औद्योगिकरण और पूंजीकरण जहाँ एक प्रमुख कारण है, वहीं बेरोजगारी विस्थापन का दूसरा प्रमुख कारण है। सुरेश सेन निशांत ने पहाड़ी लोक जीवन में हो रहे तेजी से विस्थापन की पीड़ा को देखा है। वे एक जागरूक कवि एवं जागरूक नागरिक होने के कारण उन लोगों की पीड़ाओं और संवेदनाओं को महसूस कर लेते हैं। वे न केवल मनुष्य, अपितु विस्थापन के कारण पहाड़ों के दर्द को भी जान लेते हैं। युवा आलोचक श्रीधरम इस विशेषता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, ''पहाड़, नदियाँ, पेड़-पौधे, चिड़ियाँ सभी पहाड़ी लोक जीवन के अभिन्न अंग हैं और इनकी तकलीफें कवि अपनी हर धड़कन में महसूस करता है। अत: पलायन पहाड़ का भी स्थायी अंग बना हुआ है।''[40]

सुरेश सेन निशांत विस्थापन की समस्या पर बहुत मार्मिक ढंग से लिखते हैं :

"यहाँ के जवान लड़के / दूसरे तपते शहरों की ओर निकल गए हैं
रोटी की तलाश में/पहाड़ उन्हें निहारते हैं दूर से
रहते हैं अकसर उदास उनकी याद में।"[41]

सुरेश सेन निशांत 21वीं सदी के अत्यन्त आशावादी रचनाकर हैं जो आम लोगों के लिए पहाड़ों में भी आस जगा देते है। वे अपनी कविता 'पच्चीस की उम्र' के माध्यम से उस नवयुवा वर्ग की विस्थापन की पीड़ा को रेखांकित किया है, जो रोजगार की तलाश में घर से दूर चले गये हैं। इसीलिए कवि सुरेश सेन निशांत लिखते हैं :

"पच्चीस की उम्र में/घर से दूर निकल गया था वह
एक छोटी-सी नौकरी के लिए/अंगुली पकड़कर।"[42]

वे यह बताते हैं कि किस प्रकार वह एक ओर विस्थापन की पीड़ा सहने के लिए अभिशप्त है, वहीं दूसरी ओर वह परिवार से दूर होकर उन नौकरियों के पीछे भाग रहा है, जिसका कोई भरोसा नहीं। वे लिखते हैं :

''पच्चीस की बरस की उम्र/के लड़के का पिता/अपने कांधों के बोझ को
हल्का करने की सोचने लगता है /उसे जब नहीं दिखते कभी
काग़ज पे लिखे अक्षर साफ़-साफ़/तो वह ऐनक नहीं ढूँढता
अपने पच्चीस बरस के/लड़के को पुकारता है/और पूछता है उससे
उस इवारत के बारे में/जो उससे नहीं पढ़ी जा रही होती है।"[43]

भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की अवधारणा है जिसमें दादा-दादी,चाचा-चाची, बहु- बेटे, भाई-बहन तथा बच्चे एक साथ मिलकर रहते हैं। लेकिन इस सदी में नवयुवा वर्ग नौकरी की तलाश में घर से दूर चले जाते हैं और कई वर्षों तक घर लौटकर नहीं आते। इस

कविता में बूढी माँ जो चाहती है कि उसे गृहस्थी से मुक्ति मिले और उसकी बहु उसके कार्यभार को संभाल ले। इसी को रेखांकित करते हुए कवि निशांत जी लिखते हैं :

"पच्चीस के उम्र के लड़के की माँ/जब जल्दी ही थक जाती है
काम करते करते/तो वह संग-साथ के लिए
एक बहू के बारे में सोचने लगती है/पता नहीं क्यों?
अपना सब कुछ जो उसे प्रिय होता है
किसी अजनबी लड़की को, सौंप देना चाहती है" [44]

साम्प्रदायिकता भारत देश की सबसे प्रमुख समस्याओं में से एक है। यह समस्या भारत के विभाजन की प्रक्रिया के साथ ही शुरू होती है। भारत एक धर्म निरपेक्ष गणराज्य है। जहाँ पर सभी धर्मों के लोगों को समान-रूप से रहने, खाने पीने एवं धार्मिक कार्य करने का अधिकार प्राप्त है। इसीलिए यहाँ पर सभी धर्मों के लोग भाई-चारे के साथ रहते हैं लेकिन कुछ देश ऐसे हैं जो भारत को खुशहाल नहीं देखना चाहते हैं। वह अपने धर्म की महत्ता को स्थापित करने के लिए यहाँ के अल्पसंख्यक को अलग-अलग प्रकार से फंडिंग करते हैं और धर्म के नाम पर उन्हें गलत शिक्षा देते हैं। इसी का लाभ उठाकर धार्मिक मतभेद पैदा करते हैं, जिससे सांप्रदायिकता का प्रसार होता है, इससे देश की एकता और अखंडता प्रभावित होती है। सुरेश सेन निशांत 21वीं सदी में हिंदी कविता के प्रसिद्ध कवियों में से एक ऐसे कवि है जिन्होंने सुदूर हिमाचल के पर्वतीय क्षेत्र में रह कर भी देश-दुनिया की खबरों से जागरूक रहकर अपने समय की ज्वलंत समस्यों को अपने काव्य का विषय बनाया है। साम्प्रदायिकता की आँच से झुलसते मानवीय रिश्तों को बचाने की मुहिम निशांत जी की कविताओं में दिखाई देती है। 'छोटे मुहम्मद' कविता के माध्यम से वह दिखाते हैं कि हिंदी-मुस्लिम एकता में दरार पैदा हो गयी है, जिसे हम इन संबंधों को झुठला नहीं सकते। इसीलिए सुरेश सेन निशांत लिखते हैं कि किस प्रकार समय

वर्तमान में जीवन का रस धीरे-धीरे सूख रहा है। आजादी से पहले हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम थी, उस लोक जीवन में वे आपस में बहुत खुशहाली के साथ रहते थे, वहीं आज स्थितियां बदल गयी हैं। निशांत जी लिखते हैं :

"छोटे मुहम्मद!/पक गये दिखते हैं/देवकी के बगीचे के आम
चलो चुपके से/सुग्गों से पहले वहाँ पहुँच जाएँ/दो चार आम चुरा ले आएँ
अपने एकान्त / उनकी मिठास का/जी भर आनन्द उठाएँ।"[45]

किस प्रकार लोक समाज की स्थितियाँ बदल रही हैं। दु:ख का साक्षात् उदाहरण सुरेश सेन निशांत की कविता 'छोटे मुहम्मद' की इस पंक्तियों में देखा जा सकता है :

"अब नहीं रहा/वैसी शरारतों का मौसम
न रहे वो रस भरे आम के पेड़/न नदी ही रही उतनी चंचल
भुट्टों के खेतों में/बिजूके की जगह/खड़े है लठैत।"[46]

सुरेश सेन निशांत के साम्प्रदायिकता सम्बन्धी विचारों पर आत्मारंजन लिखते हैं, "सुरेश सेन निशांत वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध कवि है जो असहिष्णुता के खतरों को भली-भाँति समझता और समझाता है। 'छोटे मुहम्मद' कविता में आम और भुट्टे चुराने जैसी बाल सुलभ स्मृतियाँ हैं और इन पर भारी पड़ती तमाम मानवीय रिश्तों के चेहरे झुलसाती साम्प्रदायिकता की आग है।"[47]

सुरेश सेन निशांत साम्प्रदायिकता और दहशतगर्दी के विरुद्ध एक मुहिम चलाते हैं। जिसमें वह इन मानवीय रिश्तों में कम होते जीवन-रस को बचाना चाहते हैं। इसीलिए वे आमजन को जागरूक करते हैं, जिससे लोग मिलकर इस आँच को दूर कर सकें, ताकि फिर से बंधुत्व एवं भाईचारे की स्थापना की जा सके।

आत्मा रंजन अपने लेख: 'मार्मिकता और प्रतिरोध का कवि: सुरेश सेन निशांत' में अयोध्या कविता के माध्यम से समाज के उच्च आदर्शों एवं विसंगति पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं, "धर्म के आदर्शों की बड़ी-बड़ी बातें हम खूब कहते-सुनते रहते हैं। आस्था और भावनात्मक मुद्दों को इस्तेमाल और व्यापार करने वाले तो और भी ऊँचे स्वर और व्यग्र रूप में। लेकिन व्यवहार के स्तर पर इन आदर्शों की गद पीटते हैं- यहाँ बड़े ही संवेदनशील एवं संयत ढंग से यह कविता इस तथ्य को उघाड़ती है। "[48]

आत्मा रंजन जी ने 'अयोध्या' कविता को साम्प्रदायिक- वैचारिक विमर्श की एक अलहदा किस्म की कविता माना है। 'अयोध्या' की पौराणिक कथा में इसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम और रामराज्य का आदर्श माना गया है, जिसमें मनुष्य का एक-दूसरे से सम्बन्ध अत्यन्त प्रगाढ़ और आत्मीयता का है, उन रिश्तों में केवल प्रेम ही प्रेम है। सुरेश सेन निशांत इसी तथ्यात्मक प्रतीक का प्रयोग करके कविता का रूपक रचते हैं, जिसमें उनकी व्यंग्यात्मकता आज के जटिल यथार्थ को उघाड़ने में अद्भुत सफलता प्राप्त करती है। वे इस कविता के माध्यम से अपने समाज का रूपक रचना चाहते हैं, एक मानदण्ड तैयार करना चाहते हैं, यह काम वे अपनी व्यंग्यात्मक भाषा के माध्यम से रचते हैं। वे अपने प्रतीकों के माध्यम से अपने पहाड़ी लोक जीवन की वस्तु-स्थितियों को उजागर करते हैं :

"काश अयोध्या में होते हमारे ये पहाड़
तो शायद बचा रहता इनका हरापन
बची रहती इनकी ये धज
जिसे हर रोज लूटते जा रहे हैं
कुछ लालची "[49]

निशांत ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं, जिसमें अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, छोटे-बडे इत्यादि का भेद न हो। उनमें आपसी भाई-चारा हो, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व हो। वे लिखते हैं :

''वहाँ सरयू नदी में/बड़ी मछलियों के सामने
तैरती रहती होगी बेखौफ/छोटी मछलियाँ।'' [50]

वे अफसोस व्यक्त करते है कि वे जिस समाज का निर्माण करना चाहते हैं, वह अभी स्वप्न है, इसे पूरे होने में थोड़ा समय लगेगा। वे लिखते हैं :

"मेरे घर से तो, बहुत दूर है अयोध्या।"[51]

'गुजरात' सुरेश सेन निशांत की बहुआयामी एवं सार्थक कविता है। इसमें कवि एक ओर अतीत की घटनाओं के प्रति एक स्नेह और सौहार्द का भाव रखते हैं तो दूसरी ओर भय, संशय, धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिकता की परिव्याप्त स्थिति को स्पष्ट करते हैं। भय, संशय और दहशतगर्दी जहाँ परिवेश एवं वातावरण में एक घुटन की स्थिति पैदा करते हैं, वहीं दूसरी ओर अतीत की स्मृतियों में डूबकर देखने में उनके भीतर का अपार स्नेह और प्रेम का भाव दिखाई देता है। कवि को उस परिवेश (गुजरात) से आशा है कि वह उसके देश के भविष्य को सुरक्षित बनायेगा और उसके फलने-फूलने की लिए एक नये वातावरण का निर्माण करेगा। इसीलिए लेखक वर्तमान स्थिति के प्रति संशय का भाव रखता है। 'गुजरात' की चिंता को निशांत अपने शब्दों में इस तरह से बया करते हैं :

"गुजरात! पता नहीं कैसी होगी /तुम्हारे चेहरे की रंगत
तुम्हारी खुशी/तुम्हारी देह की थकान
पता नहीं कौन से गीत/कौन-सा मंत्र/कौन-सी दुआ
बुदबुदाते रहते होगे तुम/सुबह से शाम

--- --- ---

वह छोटा-सा कस्बा काठियावाड़

जहाँ जन्मे थे अपने गांधी।"[52]

सुरेश सेन निशांत हिमाचल प्रदेश के लोक जीवन के प्रमुख कवि हैं। इसीलिए उनकी कविताओं में उनके लोक जीवन के सुख-दुख ,आशा-निराशा इत्यादि के भाव आते हैं। हिमाचल प्रदेश में पहाड़ी लोकजीवन के लोग भरण-पोषण के लिए वन-जंगलों से लकड़ी काटना, सीढ़ीदार खेत बनाकर अदरक, गेहूँ की खेती करना ही इनका प्रमुख व्यवसाय है। बाद में पहाड़ी लोक जीवन में औद्योगिकीकरण के प्रवेश ने उन्हें कुछ रोजगार का तो अवसर प्रदान किया है। लेकिन उसने अप्रत्यक्ष रूप से पहाड़ी लोक-जीवन को खोखला बनाया है। सुरेश सेन निशांत इसी कारण हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे में आयी विद्वेष की खाई को पाटने के लिए वह गुजरात को एक प्रेम-संदेश भेजते हैं। वह अपने लोक के युवाओं को गुजरात भेजते हुए यह गुहार लगाते हैं कि मैं अपने पुत्र को भेज रहा हूँ जो थोड़ा अड़ियल है, लेकिन संस्कार से भरा हुआ है। सुरेश सेन निशांत इसी प्रेम के संदेश को अत्यन्त विनम्रता और आग्रह पूवर्क गुजरात को समर्पित करते हैं। वे लिखते हैं :

"जब दूर इन पहाड़ों से /भेज रहा हूँ अपने बेटे को

नौकरी के लिए तुम्हारे पास

गुजरात! मैंने उसे, बड़े प्यार से पोसा है

मैंने रोपे हैं, उसने बहुत से / प्यारे संस्कार

वह सेब की मीठी गंध से भरा

तुम्हारे गाँधी जैसा थोड़ा अडियल है

उसका ख्याल रखना।

--- --- ---

समझो मैं धान का बिजड़ा/अपने शब्दों की गंध

पहाड़ी बादाम का एक आकर्षक पेड़

रोप रहा हूँ तुम्हारे खेतों में/तुम्हारी इस उर्वरा धरती पर

अब पानी और खाद का/तुम्हारा जिम्मा।''[53]

लेकिन जब कवि अतीत की स्थितियों को देखता है तो उसमें गुजरात के उस अतीत का बिम्ब उभरकर सामने आता है जिसमें वहां का परिवेश डर, भय, संशय व धार्मिक कट्टरता के भाव से भरा हुआ है। इसीलिए वे लिखते हैं :

''पर गुजरात मैं भरा हुआ हूँ भय से

मैं भरा हुआ हूँ चिंता से/मैं भरा हुआ हूँ आशंका से। '' [54]

सुरेश सेन निशांत अपने समकालीन समय के प्रति जागरूक रचनाकार हैं। इसीलिए वह अपने समय की घटना से प्रभावित होते हैं। गुजरात में हुए 'गोधरा हत्या-काण्ड' के प्रति अफसोस जाहिर करते हुए हिन्दुत्ववादी मानसिकता पर कुठाराघात करते हैं। वे समाज के ठेकेदारों के प्रति अलग रुख अपनाते हैं और इससे प्रभावित लोगों के प्रति प्रेम का संदेश भेजते हैं। सुरेश सेन निशांत गुजरात के इतिहास और वर्तमान की स्थितियों की तुलना करते हुए उन कारणों की तलाश करते हैं जिसके कारण अब गुजरात में भय, दहशतगर्दी और आतंक का माहौल है।

आत्मा रंजन इस सम्बन्ध में लिखते हैं, ''गुजरात को दो स्थितियों में देखा जा सकता है। एक इतिहास और दूसरा वर्तमान। जैसे- गाँधी और गोधरा के विपरीत बिन्दु। कविता की स्मृति में गुजरात गाँधी जी की जन्मस्थली और कर्मस्थली के रूप में दर्ज है और (गोधरा काण्ड) उसके वर्तमान रूप में धर्म की कट्टरता और जातिभेद तथा साम्प्रदायिकता की बू आती है।''[55]

सुरेश सेन निशांत इस स्थिति को निम्न प्रकार से अपनी कविता में स्थान देते हैं :

''गुजरात! बहुत बुरा चल रहा है वक्त /यहाँ तो खाँसी में भी
सूंघी जाती है धर्म की बूँ/यहाँ तो हँसी में भी, देखा जाता है जात का रूप
यहाँ तो भाषाई अक्षरों को रंगने के लिए/निचोड़ लिया जाता है निर्दयता से
किसी निरपराध की देह का लहू।''[56]

सुरेश सेन निशांत गुजरात की इस विडम्बनात्मक स्थिति का चित्रण बहुत ही संवेदनशील और सहज ढंग से करते हैं। वह इस स्थिति पर अफसोस जाहिर करते हैं तथा गुजरात को प्रेम-सन्देश भेजते हैं कि गुजरात जो सत्य, अहिंसा, प्रेम, सद्भाव के लिए विश्व में जाना जाता था, वह आज डर, भय संशय, आतंक, धार्मिक कट्टरता और अहिष्णुता का केन्द्र बनता जा रहा है। कवि इस प्रेम-संदेश से गुजरात में शांति और अमन का माहौल तैयार करना चाहता है। इसीलिए वे हिमाचल से पहाड़ी लोक जीवन के संस्कारों को वहाँ रोपना चाहते हैं :

"गुजरात! मैं अपने इन पहाड़ों / से भेज रहा हूँ
सुगन्धित फूलों के कुछ बीज/अपने बेटे के ख्यालों में डालकर
तुम उन्हें अपने घर आँगन की क्यारियों में/जरूर-जरूर रोपना

--- --- ---

मैं भेज रहा हूँ/बरसों तक गाये जाने वाला गीत
तुम उसे जरूर सुनना/अपने एकांत में उसे गुनगुनाना
तुम्हें उस गीत को गाते हुए/अपने बचपन के दिन याद आयेंगे
याद आयेगा पिता का स्नेह भरा स्पर्श/पिता के पसीने से भीगा हुआ
एक खुशनुमा मेहनत से महकता हुआ/दिन याद आएगा।
तुम भर जाओगे अनंत खुशी से।"[57]

कवि सुरेश सेन निशांत अपनी कविताओं के माध्यम से देश के विभिन्न समुदायों एवं स्थलों पर छाये भय, संशय, डर, धार्मिक कट्टरता एवं असहिष्णुता के खर-पतवार को साफ और दूर करके प्रेम और सुगंध से भरे बीज को रोपना चाहते हैं, जिससे हमारा भविष्य खुशहाल रहे। सुरेश सेन निशांत की कविताएँ किसी भी सम्प्रदाय के प्रति उदासीनता उपेक्षा, विद्वेष, घृणा, विरोधी एवं आक्रमण की भावना को त्याग कर एक स्वास्थ्य समाज की स्थापना करना चाहते हैं। इस साम्प्रदायिक मत व इसके प्रति विरोधाभास की स्थिति पैदा करने वाली स्थितियों के प्रति कड़ा रुख अपनाते हैं।

गुजरात त्रासदी पर लिखी गई मंगलेश डबराल व देवी प्रसाद मिश्र की कवितायें महत्त्वपूर्ण हैं, जिसमें एक ओर गुजरात की त्रासद पीड़ा है तो दूसरी ओर कविता में भविष्य के बीज सन्निहित है, गुजरात की त्रासदी मामूली घटना नहीं है। उसके पीछे इतिहास का रक्त-रंजित चेहरा है, जो फासिज्म एवं हिन्दुत्व का रूप है। इन प्रतिक्रियावादी ताकतों द्वारा गुजरात को हिन्दुत्व की प्रयोगशाला बनाया गया, जो हमें यह बताता है कि आने वाले दिनों में सांप्रदायिक समुदायिक शक्तियों और फासिस्टवादी ताकतों का गठबंधन हिंसा को नये ढंग से प्रायोजित करेगा। अल्पसंख्यकों की आबादी को दर-बदर कर उनके भीतर असुरक्षा और आतंक का भाव भरेगा। 21वीं सदी की कविता हमें इन सबसे आगाह करती है।

कवि विजेन्द्र सुरेश सेन निशांत के पहले काव्य संग्रह 'वे जो लकड़हारे नहीं हैं' में उनके महत्व को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, "इधर हाल में जिन युवा जनवादी कवियों में अपनी सहज पहचान बनाई है, उसमें सुरेश सेन निशांत प्रमुख हैं।''[58]

सुरेश सेन निशांत की कविताओं की बनावट में एक ठेठपन और बेबाकी है, यह ठेठपन और बेकाकी उनकी कविताओं में अत्यंत अल्हड़ और सरलता के साथ आते हैं, जिसमें लोकतत्व को महसूस किया जा सकता है। निशांत समाज की रूढ़ियों, कुरीतियों एवं आडम्बर

को अपनी कटु और तीखी रूप से भर्त्सना करने का साहस भी है, लेकिन यह भर्त्सना हमें कभी भी उपदेशात्मक प्रतीत नहीं होती।

आत्मारंजन सुरेश सेन निशांत से सम्बन्धित लेख में लिखते हैं, "निश्चित रूप से कविता में दुरूह होना आसान है और सुविधा जनक भी। दुरूह होने के विपरित सरल होने में स्पष्ट और संश्लिष्ट होने की जोखिम भरी चुनौती रहती है। निशांत जी ने सरलता को साधने का प्रयास किया है। निशांत का कवि एकाधिक कारणों से कबीर की परम्परा से जुड़ता है। अपने सरल बोध के कारण ही नहीं, अपने ठेठपन और बेबाकी के कारण भी। साथ-ही-साथ अपने पाखंड और आडम्बर तोड़ने के कारण भी।"[59]

रचनाकार मुरारी शर्मा भी सुरेश सेन निशांत की काव्य भाषा के सम्बन्ध में लिखते हैं, "उनकी कविता भाषा में सायासपन नहीं, एक अनगढ़ अपनापन है जो पाठक को बाँधती है, आकर्षित करती है।"[6०]

सुरेश सेन निशांत की कविता 'दोस्त' में उनकी यह अनगढ़ता और अपनापन दिखाई देता है। वे लिखते हैं :

''बहुत पुरानी और एक-सी है/हमारी खुद्दारी और हठ

--- --- ---

धरती को हल की फाल से नहीं

अपने मजबूत इरादों की नोंक से

बनाते है हम उर्वरा।''[61]

निशांत ने अपनी कविता को रचने के लिए कई प्रकार के रूपकों को प्रतीकात्मक रूप में रचा है। 'वे जो लकड़हारे नहीं हैं' कविता एक प्रतीकात्मक रूपक रचती है जिसमें दो वर्ग हैं- एक वे पाँच जन, जो पेड़ काटने के अपराध में पकड़े गये हैं, प्रकृति के संसाधनों में जिनकी

भागीदारी नगण्य है। दूसरे यहाँ बाकी सब जो अलग-अलग वर्ग एवं व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं। इसमें वे तो हैं ही जिनके लिए वे लकड़हारे पेड़ काटते हैं, जो इनके श्रम और सजाओं की कीमत पर मालामाल होते हैं, वन एवं पुलिस विभाग अर्थात् प्रशासन वर्ग और भारतीय संविधान का चौथा स्तम्भ कही जाने वाली मीडिया के प्रतिनिधि भी हैं। ये सभी वर्ग एवं व्यवस्थायें मिलकर कमजोर वर्ग को अपराधी साबित करने में लगे हुए हैं। अपनी पदोन्नति एवं पुरस्कार के लिए किसी भी हद तक वे गिरने के लिए तैयार है। सुरेश सेन निशांत अपनी पक्षधरता के माध्यम से इस छल-प्रपंच और भ्रष्टाचार की जटिल स्थिति को पर्दाफाश करते हैं, जिसमें इनकी भाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वे व्यंग्यात्मक रूप में लिखते हैं :

"यह जो स्थानीय अखबारों में /छपा है फोटू
वन माफिया के पकड़े गये गुर्गों का/दीन हीन-फूटे हाल
निरीह से जो बैठे है पाँच जन तक पंक्ति में
यहीं है वन माफिया के पकडे गये बड़े गूर्गे

--- --- --- ---

फोटू में जो इनके पीछे गर्व से/सीना ताने जो खड़े हैं
ये पुलिस और वन विभाग महकमें के
मँझोले घाँघ अफसर है"[62]

इस अफसर का व्यक्तित्व निशांत जी ने 'घाँघ' शब्द के माध्यम से बहुत सटीक ढंग से अभिव्यक्त किया है। वे व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं :

"कड़ी सजा बहुत जरूरी है/तेज़ी से खत्म हो रहे
जंगलों को बचाने के लिए
कहेंगे मानवीय न्यायाधीश/इन्हें न्याय सुनाते हुए।

------- -------- --------- ----------

और न्याय की यही असली भूमिका भी है

इनके जीवन में /पर्यावरण प्रेमियों के लिए भी

राहत का विषय है इनका पकड़े जाना।''[63]

निष्कर्षतः सुरेश सेन निशांत अपनी सहज, शालीन और प्रतीकात्मक भाषा से अपने समय और समाज के जटिल यथार्थ को गहराई से पकड़ते हैं। यही जटिल यथार्थ 21वीं सदी की हिंदी कविता की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। सुरेश सेन निशांत की कविता के बिना 21वीं सदी की हिंदी कविता का परिदृश्य पूरा नहीं होता है। वे हिंदी कविता को अपने लोक और काव्य से न केवल समृद्ध करते हैं अपितु हमारे सोचने विचारने के विभिन्न आयामों की भी सृजना करते हैं। वे सूक्ष्मता से पहाड़ी लोक जीवन के श्रम, संघर्ष और उसकी संवेदनाओं को न केवल उद्घाटित करते हैं, अपितु पारंपरिक ढांचों को तोड़कर नए ढ़ंग से भी उनकी व्याख्या करते हैं।

संदर्भ :

1. चौहान, मनोज; लेख; बया, सं० गौरीनाथ, अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); अक्टूबर 2018- मार्च 2019; पृ. 18.
2. श्रीधरम; लेख; बया, सं० गौरीनाथ, अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); अक्टूबर 2018- मार्च 2019; पृ. 21.
3. निशांत, सुरेश सेन; वे जो लकड़हारे नहीं हैं; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण : 2010; पृ. 25.
4. निशांत, सुरेश सेन; कुछ थे जो कवि थे; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण : 2015; पृ. 9.
5. वही; पृ. 73.
6. वही; पृ. 74.
7. वही; पृ. 73.
8. वही; पृ. 72.
9. निशांत, सुरेश सेन; वे जो लकड़हारे नहीं हैं; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण : 2010; पृ. 49.
10. वही; पृ. 39.
11. वही; पृ. 48-49.
12. वही; पृ. 87.
13. वही।
14. वही; पृ. 87-88.
15. निशांत, सुरेश सेन; कुछ थे जो कवि थे; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण : 2015; पृ. 45.
16. निशांत, सुरेश सेन; वे जो लकड़हारे नहीं हैं; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण : 2010; पृ. 46.
17. वही; पृ. 45-46.
18. वही; पृ. 45.
19. वही।
20. वही; पृ. 47.
21. वही; पृ. 39.
22. वही; पृ. 18-19.
23. जोशी, राजेश; प्रतिनिधि कविताएँ; राजकमल प्रकाशन , 1-बी , नेताजी सुभाष मार्ग , दरियागंज नई दिल्ली -110002 ; संस्करण-2017; पृ. 74-75.
24. वही; पृ. 74-75.
25. निशांत, सुरेश सेन; कुछ थे जो कवि थे; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण : 2015; पृ. 55-56.

26. वही; पृ. 55-56.
27. वही; पृ.56.
28. वही; पृ. 25.
29. वही।
30. वही; पृ. 32.
31. वही; पृ. 33.
32. वही; पृ. 45-46.
33. वही; पृ. 48.
34. वही; पृ. 49.
35. वही; पृ. 84-85.
36. वही; पृ. 10.
37. वही; पृ. 40.
38. वही; पृ. 10.
39. वही; पृ. 12.
40. श्रीधरम; लेख; बया, सं० गौरीनाथ, अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); अक्टूबर 2018- मार्च 2019; पृ. 20.
41. निशांत, सुरेश सेन; वे जो लकड़हारे नहीं हैं; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण : 2010; पृ. 36-37.
42. वही; पृ. 85.
43. वही।
44. वही; पृ. 84-85.
45. वही; पृ. 9.
46. वही; पृ.10.
47. रंजन, आत्मा; लेख; समकालीन भारतीय साहित्य (सं. कंबार,चंद्रशेखर ,कौशिक, माधव एवं के० श्रीनिवासराव) ; साहित्य अकादमी रवीन्द्र भवन, 35 फ़िरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001 ; वर्ष-39 ;अंक:202; मार्च-अप्रैल 2019; पृ. 134.
48. वही; पृ. 134-135.
49. निशांत, सुरेश सेन; वे जो लकड़हारे नहीं हैं; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण : 2010; पृ. 112.
50. वही; पृ. 112.
51. वही ।
52. निशांत, सुरेश सेन; कुछ थे जो कवि थे; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005 (उ०प्र०); संस्करण : 2015; पृ. 37.
53. वही; पृ. 38.
54. वही।

55. रंजन, आत्मा; लेख ;समकालीन भारतीय साहित्य (सं. कंबार,चंद्रशेखर ,कौशिक, माधव एवं के० श्रीनिवासराव); साहित्य अकादमी रवीन्द्र भवन, 35 फ़िरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001; वर्ष-39 ; अंक:202 ; मार्च-अप्रैल 2019; पृ. 136-137.
56. निशांत, सुरेश सेन; कुछ थे जो कवि थे; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०) ; संस्करण : 2015; पृ. 39.
57. वही; पृ. 41.
58. निशांत, सुरेश सेन; वे जो लकड़हारे नहीं हैं; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण : 2010; आवरण पृष्ठ से
59. रंजन, आत्मा; लेख ;समकालीन भारतीय साहित्य (सं. कंबार,चंद्रशेखर ,कौशिक, माधव एवं के० श्रीनिवासराव); साहित्य अकादमी रवीन्द्र भवन, 35 फ़िरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001; वर्ष-39 ; अंक:202 ; मार्च-अप्रैल 2019; पृ.136-137.
60. शर्मा मुरारी; लेख; बया, सं० गौरीनाथ, अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); अक्टूबर 2018- मार्च 2019; पृ. 15-16.
61. निशांत, सुरेश सेन; वे जो लकड़हारे नहीं हैं; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन,एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण : 2010; पृ. 98-99.
62. वही; पृ. 29.
63. वही; पृ. 31.